**International Conference – 2025: Developed India @ 2047**
**Charting Multidisciplinary and Multi-Institutional Pathways for Inclusive Growth and Global Leadership held on 4th & 5th April, 2025**
**Organised by: IQAC - Gossner College, Ranchi**

# पर्यावरणीय मूल्य और आदिवासी जीवन

**डॉ० प्रेमी मोनिका तोपनो**
सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, जगन्नाथ जैन महाविद्यालय, झुमरी तिलैया, कोडरमा

---

किसी भी स्वस्थ समाज के निर्माण में उसके द्वारा तय किये गये नैतिक मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। नैतिक मूल्य हमें कई गलत कामों को करने से रोकते हैं और सद् आचरण की ओर प्रवृत्त करते हैं। इस परंपरा में हमारे पुरखों ने कुछ पर्यावरणीय नैतिक मूल्य भी बनाये थे ताकि प्रकृति के साथ हमारी सहजीविता बरकरार रहे। पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रकृति शुद्ध और विविधतामयी बनी रहे। पर्यावरणीय मूल्य से अभिप्राय उस विशिष्ट जीवन मूल्य से है, जिसे मनुष्य सभ्यता अपने अब तक के विकासक्रम में संचित करता आया है; कि प्रकृति के साथ उसके संबंध कैसे थे ? या कैसा होना चाहिए ? पर्यावरणीय मूल्य ही हमें बताता है कि हम प्रकृति के एक घटक मात्र हैं हमारी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। प्रकृति के नियमों के विरूद्ध हमारा स्वतंत्र व्यवहार ही पर्यावरणीय संकट का कारण बन रहा है। पर्यावरणीय मूल्य मानव और पर्यावरण के बीच रिश्ते की बात करता है। यह जन–समुदाय के पर्यावरण बोध को पुष्ट करता है। हम इसके माध्यम से पर्यावरणीय कठिनाइयों के कारण और निवारण का मार्ग ढूँढ सकते हैं। भविष्य की समस्याओं से आगाह करने की वैज्ञानिक दृष्टि भी इसमें सन्निहित है। पर्यावरणीय मूल्य हमें बताते हैं – ''दशपुत्रोसमः एकः द्रुमः''[1]

एक वृक्ष दश बेटों के समान है। जब से हमने इन मूल्यों की अवहेलना शुरू की तभी से पर्यावरण संकट विकराल होने लगा। प्रसिद्ध लेखक के. सिद्धार्थ कहते हैं कि – ''सभ्यता और सभ्य होने का सिर्फ एक अर्थ है, अपने आसपास के पर्यावरण का आदर और आदर सूचक मूल्य से उसके प्रति सोच। सभ्यताओं का पतन तभी होता है जब आसपास के पर्यावरण के प्रति सम्मान कम हो जाता है, पर्यावरण के प्रति नजरिया व परिप्रेक्ष्य बदल जाता है। सिंधु घाटी, दजला फरात, माया– इन सभी सभ्यताओं का पतन इन्हीं कारणों का प्रतिफल था।''[2]

वास्तव में मानवीय लोभ एवं पर्यावरण के प्रति असंवेदनशीलता प्रदूषण के मूल कारण हैं। अपने भीतर करुणा एवं रक्षा की भावना जागृत करने से पर्यावरण के प्रति गहरा संबंध एवं उसके संरक्षण की भावना पैदा होती है। कानून महत्वपूर्ण हैं, परंतु वे पर्यावरण के संरक्षण के लिए पर्याप्त नहीं हैं। हमें पर्यावरण संरक्षण को अपनी नैतिक मूल्य पद्धति का भाग बनाने की आवश्यकता है। हमें प्रकृति से अपने संबंधों को सुदृढ़ करने वाले दृष्टिकोण और परंपरागत प्रथाओं को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। एक संवेदनशील व्यक्ति ही प्रकृति की देखभाल कर सकता है, उसे संपोषित कर सकता है। इसलिए लोगों में पृथ्वी के प्रति सम्मान भाव रखने, पेड़ और नदियों को पवित्र मान कर उनकी रक्षा करने, जीवों के प्रति करूण भावना रखने आदि के लिए प्रोत्साहित करना होगा।

इससे संवेदनशीलता को बढ़ावा मिलेगा। भारत सांस्कृतिक मूल्यों और धार्मिक लोकाचार की समृद्ध परम्परा वाला देश रहा है। वेदों और प्राचीन भारतीय ग्रंथों में पृथ्वी को माता का दर्जा दिया गया है। अथर्ववेद में कहा गया है– ''माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।''[3]

अर्थात यह भूमि मेरी माता है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ। यहां प्रकृति के पंच तत्वों अर्थात जल, अग्नि, आकाश, पृथ्वी और वायु की पूजा पीढ़ियों से होती रही है। देश भर में पेड़–पौधे, पहाड़, नदियों और फसलों की पूजा की विभिन्न धार्मिक मान्यताएं रही हैं। सरहुल, करमा, जितिया, सोहराई, गोवर्धन पूजा, छठ पूजा, तुलसी पूजा, वटवृक्ष पूजा, बैसाखी, गोदावरी पुष्करम, आम्र विवाह, माटी तिहार, बिहू, मकर संक्रांति या पोंगल जैसे त्यौहारों की जड़ें प्रकृति से जुड़ी हैं। ये पर्व प्रकृति संरक्षण और सम्मान का शाश्वत संदेश देते हैं। दुनिया भर की सभी प्राचीन संस्कृतियों ने प्रकृति पेड़–पौधों, नदियों, पर्वतों और पर्यावरण को सदा से ही महत्व दे कर संरक्षित किया है। किंतु इसके बावजूद प्रकृति पर क्रुर अत्याचार होता रहा है। किसी ने इस अत्याचार की शुरूआत बहुत पहले कर दी कोई अब कर रहा है। इसका सबसे बड़ा कारण विज्ञान को अतिशय महत्व देना है। विज्ञान एवं तकनिकी ने बहुत कम समय में ही प्रकृति को भारी नुकसान पहुंचाया है। एवं उसी अनुपात में मानवीय मस्तिष्क को प्रकृति के प्रति असहिष्णु बनाया है। एक समय में मनुष्य के पुरूषार्थ को सबसे ज्यादा महत्व दिया गया 'पहाड़ तोड़ने', 'धरती की छाती चीरने' जैसे मुहावरा गढ़े गये। इसका समाज में बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। हम पर्यावरण संरक्षण की परंपरा से कटने लगे। इसको ठीक करने का एक ही उपाय है कि हमें प्रकृति को पवित्र एवं सहजीवी मानने की परंपरा की ओर लौटना होगा।

पर्यावरण के विविध पक्षों, इसके घटकों, मानव के साथ उसके अंतर्संबंधों पारिस्थितिक–तंत्र, प्रदूषण विकास, नगरीकरण, जनसंख्या आदि का पर्यावरण पर प्रभाव आदि विषयों की समुचित जानकारी शिक्षा के माध्यम से प्रभावी ढंग से दिया जा सकता है।इसलिए पर्यावरणीय मूल्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष पर्यावरण शिक्षा है।इस शिक्षा को विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों तक ही सीमित न रखा जाय बल्कि इसे जन–जन तक पहुँचाना आवश्यक है । जब तक देश का प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण एवं जीवन में उसके महत्व को नहीं समझेगा उस समय तक वह अपने उत्तरदायित्व को नहीं समझ सकेगा, जो उसे पर्यावरण के प्रति निभाना है।

पर्यावरणीय मूल्य का अवलोकन करने पर उसके उद्देश्य का पता चलता है कि मनुष्य प्रकृति से सीखे, प्रकृति के अनुसार अपने आपको ढाले और प्रकृति को प्रदूषित करने के बजाए उसका संरक्षण करे। पर्यावरण मूल्य वास्तव में मानव द्वारा प्रकृति के प्रति अत्याचार ना करने की सीख देती हैं और भविष्य में सावधान रहने के लिए मानव को तैयार करती है। इसका उद्देश्य ऐसे समाज की रचना है जो प्रकृति और जीवों के अन्तर्सम्बधों की सही जानकारी रखता है तथा अपने आचरण को प्राकृतिक नियमों के अनुसार समायोजित कर प्रगति करता है। आज

का आधुनिक और सभ्य समाज पर्यावरण को लेकर विरोधाभासी मनोवृत्ति और द्वंद्व में उलझा हुआ प्रतीत होता है। प्रकृति के प्रति आम जनजीवन के श्रद्धाभाव में निरंतर कमी आई है। यही कारण है कि हम इसे एक वस्तु के रूप में देख रहे हैं। आजकल प्रकृति को संसाधन के तौर पर देखने और व्याख्यायित करने का चलन बढ़ता जा रहा है। जो एक दोषपूर्ण दृष्टि है। प्रकृति हमारी सुविधा प्रदाता नहीं है, वह हमारी विरासत है। सुविधा प्रदाता के रूप में प्रकृति को देखना हमारा स्वार्थ, मूल्यहीन सोच और हमारी सबसे बड़ी भूल है। हमें उसे अपनी विरासत के रूप में बहुत संभाल कर और सहेज कर रखने की जरूरत है। प्रकृति को संसाधन के बजाय अपना संरक्षक और शिक्षक के रूप में देखना चाहिए। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा भी है– ''प्रकृति हमारी जरूरत को पूरी कर सकती है हमारी लालच को नहीं।''[4]

पर्यावरणीय समस्या का एक सिरा आदिवासी जीवन से जुडता है। वर्त्तमान समय में आदिवासियों के समक्ष पर्यावरणीय समस्या चुनौती बन कर आयी है। यह उनके लिए नई समस्या है। जिसको उन्होंने कभी न देखा था, न महसूस किया था। जब से उनके अगल–बगल के जंगल उद्योग बसाने के लिए काटे गए, खनन के लिए पहाड़ को खोदा गया, गाँव के बगल में चिमनी धुआँ उगलने लगा तब से उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उन्हें भोजन की कमी होने लगी और उनका पानी भी गंदा होने लगा है–

''मैं गयी थी
उन्हें मना करने कि वे रात–दिन भट्ठा न जलायें
चिमनी से इतना ताप न उगलें बर्फ पिघल रही है,
जल स्तर बढ़ रहा है विनाश होगा
और वे हंसते रहे, मुझे दुत्कारते रहे कहा –
तुम असभ्य, जंगली, हमें सिखाते हो
क्यों मानें तुम्हारी बात? क्या है तुम्हारी औकात?''[5]

एक सीधा–सादा ग्रामीण आदिवासी पर्यावरण दर्शन को समझता है, किन्तु विकास का हवाला देते दुनिया को इतना आगे पहुँचाने वाले लोग सभी पर्यावरण दर्शन को नहीं समझते। जब कोई आदिवासी उन्हें जंगल–झाड़ को काटने से मना करता है, तो उसे असभ्य करार दिया जाता है। वह आदिवासी साफ–साफ कहता है कि जंगलों को काटने से बर्फ पिघल रहे हैं जिसके कारण समुद्र का जलस्तर बढ़ रहा है अनेक तरह की पर्यावरण संकट देखने को मिल रहें हैं, तुम्हारे द्वारा लगाये उद्योग और धुँआ जहर बनकर बरस रहा है किन्तु उसकी बात नहीं मानी जा रही है, उसे उसका औकात बताया जा रहा है। जबकि सच कहें तो आदिवासी के औकात सृष्टि को बचाने की औकात है–

''वह यूरेनियम जादूगोड़ा का ही था
वही लोग थे, वही जमीन थी
कोई लूला हो गया था,
कोई लंगड़ा हो गया था
मनुष्यता ही विकलांग हो रही थी
हमले से पूर्व मनुष्य ने मनुष्य को तोड़ा था।''[6]

पूरी दुनिया में मनुष्यता की बात की जा रही है विश्व शांति का उद्घोष किया जा रहा है किन्तु द्वितीय विश्वयुद्ध उदाहरण है कि मनुष्य ने मनुष्य को मारा। यह रही युद्ध की बात किन्तु कुछ जगहों में बिना युद्ध किए लोग, लोगों को मार रहे हैं। इसका सर्वोत्तम उदाहरण जादूगोड़ा का यूरेनियम खनन है। आदिवासी क्षेत्रों में किए जा रहे घातक खनन उससे निकलते रेडिएसन धूल धूआँ आदि प्रदूषण आदिवासी जनों को मार रहे हैं। यह कोई हमला नहीं है न ही कोई घोषित युद्ध बल्कि यह एक गैस चैम्बर है जहाँ लोगों की सांसे घुट रही है, लोग अपंग हो रहे हैं, विकलांग हो रहे हैं, बच्चे गर्भ में ही मर जा रहे हैं, मिट्टी और पानी में जहर घुल रहा है। इस तरह के पर्यावरणीय समस्या और उसका प्रत्यक्ष मार झेलता आदिवासी समाज को कवि ने रचना का विषय बनाया है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि आदिवासियों का बसावट जंगली क्षेत्र है। वे जंगल से माँ की तरह जुड़े रहते हैं। उनके रीति–रिवाज, पर्व–त्योहार, शादी–विवाह आदि सभी तरह के उत्सव में जंगल शामिल है किन्तु जब से जंगल उजड़ने लगे हैं आदिवासी भी उजड़ने लगे हैं। अब–तक के इतिहास में आदिवासियों का मुख्य बसावट जंगल रहा है। जहाँ उन्होंने जंगल के साथ सअस्तित्व का संबंध स्थापित किया था। वे बड़ा सुख–चैन से प्रकृति की गोद में विचरते थे, उनका खान–पान, भोजन, वस्तु सभी सामग्री जंगल से ही प्राप्त होता था किन्तु जब से औद्योगिकरण का आदिवासी क्षेत्रों में प्रसार हुआ है तब से उनका जीना मुहाल हुआ है। प्राकृतिक के साथ अतिशय छेड़छाड़ के कारण पूरा इको–सिस्टम ही खराब हो रहा है। जिसका दुष्प्रभाव सभी लोगों पर पड़ ही रहा है किन्तु उनमें सबसे दिक्कत आदिवासी समाज झेल रहा है क्योंकि वह जंगल से सबसे नजदीकी से जुड़ा है इसलिए पर्यावरण प्रदूषण, पर्यावरण विनष्टीकरण का उसकी जिन्दगी पर दुष्प्रभाव लक्षित हो रहा है। लोग एक तरफ ग्लोबल–वार्मिंग के नाम पर हो–हल्ला मचाए हुए हैं, वहीं दूसरी तरफ आदिवासी क्षेत्रों में बड़ी संख्या में जंगल काटे जा रहे हैं, पहाड़ तोड़े जा रहे हैं, धरती खंगाली जा रही है जो सीधे–सीधे ग्लोबल–वार्मिंग रक्षक है उसे उजाड़ा जा रहा है। इस तरह से तमाम नीजि और विश्व मानव के समक्ष उपस्थित समस्याओं के निराकरण के लिए आदिवासी समुदाय संघर्षरत है और दुनिया को खूबसूरत बनाने

के लिए श्रमरत भी है। आदिवासियों की दर्द को उनकी वेदना को कवि अनुज लुगुन की कविता स्पष्ट रूप से कहती है–

''हे चितरी चरई
हे असकल पक्षी
जंगल तो जल रहा है
पहाड़ तो धधक रहे हैं
हम दाना चुगने कहाँ जायेंगे।
हम गाना गाने कहाँ जायेंगे।''[7]

प्राकृतिक संसाधनों को उपयोग किये बिना कोई भी नवीन आविष्कार नहीं हो सकता है। हमारी अतिशय उपभोक्तावादी दृष्टिकोण के चलते नीत–नवीन विकास के नये मॉडल बनाये जा रहे हैं और उसके अनुरूप वस्तु उत्पादन अहर्निश हो रहा है जिसकी कीमत प्रकृति को चुकानी पड़ रही है।आज जब प्रकृति के ऊपर संकट पैदा हुआ तो यह स्वाभाविक रूप से आदिवासी समाज के लिए भी संकट का कारण बना। अपनी अस्मिता और अस्तित्व को बचाने के लिए आदिवासियों का प्रतिरोध खड़ा हुआ। प्रतिरोध का यह स्वर अपने सहजीवियों की रक्षा के लिए भी उठा–

''सुगना मुण्डा जंगल का पूर्वज है
और जंगल सुगना मुण्डा का
कभी एक लतर था तो दूसरा पेड़
कभी एक पेड़ था तो दूसरा लतर
दोनों सहजीवी थे
दोनों के लिए मृत्यु का कारण था
एक दूसरे से अलगाव।''[8]

आदिवासी समुदाय अपने अस्तित्व की परिकल्पना ही करता है– पर्यावरण के साथ। इसलिए आदिवासी समाज में पर्यावरण के प्रति गहन चिंता दिखाई पड़ती है। आज पूरा विश्व आदिवासी समुदाय के प्रति कृतज्ञ है। जिसने सदियों से प्रकृति को संवारा उसका संरक्षण किया और उन्हें आने वाली पीढ़ियों के लिए सहेजा।

''एक पेड़ से टिकी लतर अपनी देह पर
गिलहरी को उठा कर उसे खिलाती है और पका फल
और नदी उकेरती है यह चित्र अपने सीने में। है।''[9]

वर्त्तमान समय में आदिवासियों के समक्ष पर्यावरणीय समस्या चुनौती बन कर आयी है। यह उनके लिए नई समस्या है। जिसको उन्होंने कभी न देखा था, न महसूस किया था। जब से उनके अगल–बगल के जंगल उद्योग बसाने के लिए काटे गए, खनन के लिए पहाड़ को खोदा गया, गाँव के बगल में चिमनी धुआँ उगलने लगा तब से उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उन्हें भोजन की कमी होने लगी और उनका पानी भी गंदा होने लगा है। आदिवासी समाज के लोग समाज में प्रचलित सभी व्यवस्थाओं को जल, जंगल और जमीन से जोड़कर पूर्ण करते हैं। इस तरह से हम पाते हैं कि आदिवासी समाज का सीधा संबंध पर्यावरण से है। आदिवासी जीवन से जुड़े कार्यों को गहनता से अध्ययन करने पर पाएंगे कि आदिवासी समाज और पर्यावरण के बीच घनिष्ठ संबंध है।दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं–

''कितनी शांति होती है यहाँ इस टीले पर
पहाड़ की तराई पर, नदी के तट पर
गीत साझा करते हुए सहजीवी होते हैं।''[10]

वहीं दूसरी ओर कवियित्री कहती हैं–

''साखू के आश्रय में
सांझ होते ही चारों दिशाओं से
चिड़ियों का झुंड लौट आता है।''[11]

प्रकृति के प्रति हमारी उपेक्षा उनसे दूर होते हमारे रिस्ते उनके प्रति एक असहिष्णुता का माहौल बनाता है। आधुनिक विकास के हर एक उपलब्धि के पीछे प्रकृति की हत्या है। हमारी अतिशय उपभोक्तावादी दृष्टिकोण के चलते नीत–नवीन विकास के नये मॉडल बनाये जा रहे हैं और उसके अनुरूप वस्तु उत्पादन अहर्निश हो रहा है जिसकी कीमत प्रकृति को चुकानी पड़ रही है। हमें सतत विकास के लिए प्रकृति के साथ सहअस्तित्वमूलक व्यवहार करना होगा और इस प्रक्रिया में आदिवासी जीवन दृष्टि महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

**संदर्भ ग्रंथ –**

1. नीतिसूक्त
2. के• सिद्धार्थ–जनसत्ता, 6 जून 2016
3. अथर्व वेद–पृथ्वी सूक्त
4. महात्मा गांधी–यंग इंडिया
5. अनुज लुगुन– 'बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी', वाणी प्रकाशन, दरियागंज नयी दिल्ली, प्र. सं. –2017, पृ. सं. –90
6. वही. पृ. सं. –90
7. वही. पृ. सं. –36
8. वही. पृ. सं. –36
9. 'कलम को तीर होने दो', सं. रमणिका गुप्ता, पृ0सं0– 76
10. 'कलम को तीर होने दो', सं. रमणिका गुप्ता, पृ0सं0– 76
11. 'कलम को तीर होने दो', सं. रमणिका गुप्ता, पृ0सं0– 177–178